अल्पसंख्यकों का सवाल आज देश में अल्पसंख्यकों की समस्या भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न राज्यों में भाषागत अल्पसंख्यक और अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, दिल्ली, आदि नगरों में तो शासन और उद्योग व्यापार में बाहरी राज्यों के लोगों से असन्तोष उत्पन्न हुआ है और इन लोगों को शोषक माना जाता है। महाराष्ट्र में गुजरातियों का विरोध हुआ है, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु में मारवाड़ियों का विरोध किया गया। महाराष्ट्र में शिवसेना, असम में लच्छित सेना जैसे उग्र संगठनों का निर्माण कर बाहरी लोगों के खिलाफ उत्तेजनात्मक कार्यवाहियां की गयीं। ऐसी संकीर्णता की भावनाएं उत्पन्न करना खतरनाक है। भारत में सभी लोगों को अपनी इच्छानुसार घूमने-फिरने-बसने और व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता है तो फिर ऐसी प्रान्तीयता की संकीर्ण भावनाएं फैलाना क्या राष्ट्र विरोधी कार्यवाही नहीं है ?

4. छोटे-छोटे राज्यों की मांग कई राज्यों में यह मांग जोर पकड़ती जा रही है कि बड़े राज्यों को छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित कर दिया जाना चाहिए। छोटे राज्य जहां प्रशासनिक दृष्टि से उपयुक्त रहते हैं, वहीं उनका विकास भी शीघ्र होता है। आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना की मांग की गयी तो मध्य प्रदेश में भी छोटे राज्यों की मांग उठी। इससे राज्यों की संख्या बढ़ जाएगी, क्षेत्रीय और प्रान्तीय दलों का उदय हो जाएगा और राष्ट्रीय एकता को गम्भीर आघात पहुंचेगा। छोटे राज्य आर्थिक दृष्टि से भी उपयुक्त नहीं रहते और ऐसी मांगों के पीछेराजनीतिक स्वार्थ ही अधिक होता है। देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी छोटे राज्यों की मांग का कोई औचित्य नहीं है। 5. प्रादेशिकता— प्रादेशिकता की बढ़ती हुई भावना भी

एकता के विकास में एक अवरोधक तत्व है। राजनीति की दृष्टि से प्रादेशिकता का मुख्य विरोध संघवाद से है। प्रादेशिकता के पक्षपाती न केवल हर प्रकार के परिव्यापक विकेन्द्रीकरण और पूर्ण स्वशासन की मांग करते हैं अपितु अतिवादी आक्रामक प्रादेशिकता के कुछ प्रवक्ता तो संघ से भी अलग हो जाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उन पर केन्द्रीय सरकार का कोई नियन्त्रण न रहे और न उनका केन्द्रीय सरकार के प्रति कोई दायित्व । इस स्थिति का स्वाभाविक फल होता है कि वे मांग करने लगते हैं 'हम देश से अलग हो जाएं', 'हमारे हाथ में प्रभुसत्ता आ जाय' तथा 'हमारा अपना पृथक् स्वदेश बन जाए। प्रादेशिक भावना के बलवती होने का दुष्प्रभाव न केवल संघ और राज्य के सम्बन्धों पर पड़ता है अपितु राज्यों के आपसी सम्बन्ध भी बिगड़ते हैं, पड़ोसी राज्यों में भाषा, सीमा, आदि प्रश्नों को लेकर विवाद उठ खड़े होते हैं तथा विभिन्न राज्यों की जनता के बीच खाई बढ़ने लगती है।

तमिलनाडु का डी. एम के दल प्रारम्भ में द्रविड़ - स्थान की स्थापना की मांग करने लगा। बाद में यह दल 'राज्यों की स्वायत्तता' की मांग करने लगा। सितम्बर 1970 में डी. एम. के के तत्वावधान में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें प्रस्ताव पारित करके राज्यों में स्वशासन की मांग की गयी। डी

एम. के. के नेतृत्व में राज्य में पृथकतावादी आन्दोलन चलाया गया। आज भी महाराष्ट्र और कर्नाटक, कर्नाटक और केरल, नगालैण्ड और असम, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के मध्य सीमा विवाद की समस्या बनी हुई है। महाराष्ट्र महाराष्ट्रवासियों के लिए है या बंगाल केवल बंगालियों के लिए, इस प्रकार के नारे • घोर प्रादेशिकता की भावना के द्योतक हैं। इन नारों का मतलब यह होता है कि महाराष्ट्र में बाहर के जो लोग सरकारी या गैर-सरकारी नौकरियों में हैं अथवा जो व्यापार-व्यवसाय है वे उस राज्य को छोड़कर बाहर चले जाए। इस तरह बंगाल में गैर-बंगाली लोगों को नौकरियों पर नियुक्त न किया जाए। और न ही दुकान व्यवसाय करने दिया जाए। कुछ क्षेत्रो मेंअभी असन्तोष है, जैसे उत्तर-पूर्व में मीजो जाति, झारखण्ड में छोटा नागपुर तथा छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाके और गुजरात व उड़ीसा में आदिवासियों का स्वायत्तता का आन्दोलन । इस तरह की भावना से क्षुद्रता और संकीर्णता प्रकट होती है। अतिरंजित प्रादेशिक दावों के कारण फूट डालने वाले ऐसे विवाद बढ़ने पर राष्ट्रीय एकता गम्भीर खतरे में पड़ जाती है और प्रादेशिक लगाव तथा निष्ठा के कारण देश की आधारभूत एकता को भुला दिया जाता है। यह कहा जा सकता है कि दुर्भाग्यवश, विग्रह और वैमनस्य से पूर्ण असंयत प्रतियोगिता को लोकतन्त्रीय राजनीति ने और स्थानीय या प्रादेशिक नेतृत्वकी बेलगाम घुड़दौड़ ने जनता को बहकाकर ऐसे विवाद बढ़ाने में योगदान दिया है। संक्षेप में, उग्र प्रादेशिकता के दावे राष्ट्रीय एकता की भावना को दुर्बल बना देते हैं और लोकतन्त्र तथा स्वाधीनता के लिए खतरा पैदा हो जाता है।